छठा अध्याय : हिंदी कथेतर साहित्य में एलजीबीटीक्यू जन (LGBTQ)

छठा अध्याय : हिंदी कथेतर साहित्य में एलजीबीटीक्यू जन (LGBTQ)

जो व्यक्ति समाज प्रदत्त जेंडर और सेक्सुअलिटी व्यवहार से भिन्न स्वयं की पहचान बताता है और उसकी स्वीकृति चाहता है तो उसे कई सवालों और जवाबों से गुजरना पड़ता है क्योंकि सामाजिक संरचनाओं का प्रवेश किसी सामाजिक स्थल से होता हुआ व्यक्ति के बेडरूम तक, आपसी संबंधों तक में होता है। जिससे जूझ पाना बेहद कठिन होता है। ये समाज प्रदत्त ढांचे हमारे रहन-सहन, खान-पान, भाव-व्यवहार, सामाजिकता, नैतिकता, धार्मिकता, इत्यादि में घुले-मिले होते है। इस पहचान से निकलना एक नयी परिभाषा देना तथा स्वयं को एक नया जन्म देना है।

1. 'भँवरी' की जीवनी (1996) : माया और शांति

माया और शांति द्वारा लिखित 'भँवरी' की जीवनी आभा भैया द्वारा संपादित पुस्तक 'किनारों पर उगती पहचान' में सन् 1996 में प्रकाशित हुई। यह एक एकल स्त्री की जीवनी है जिसने अपने जीवन को अपने शर्तों पर जिया। जिसके लिए समाज और उसके मूल्यबोध के बरक्स मानवीयता का मूल्यबोध कही अधिक महत्वपूर्ण है। भँवरी ने अपने जीवन को सहजता से जिया। समाज के नियम कानून एक तरफ़ और भँवरी के जीवन के नियम एक तरफ़।

लगभग बारह-तेरह वर्ष की उम्र में भँवरी का विवाह कर दिया गया। तब जब वह विवाह का अर्थ भी नहीं समझ रही थी। नये घर नये परिवेश में आई भँवरी डरी और सहमी थी; वह समझ ही नहीं पाई तब की अचानक क्यों उसे अपना घर, अपने मां-बाप को छोड़कर आना पड़ा। पर धीरे-धीरे भँवरी ने ससुराल में बहुत कुछ सीखा। पहले-पहल भँवरी जब "अपने आदमी सुखराम से मिली। छोटी-सी गठरी बनकर भँवरी

अपनी भतीजी के साथ रात में बालपन की गहरी नींद में खोई थी। न जाने कब, कैसे उसकी साथिन चली गई और पास उसका पति दोने में बर्फी लेकर खड़ा था। भँवरी अचकचा कर उठ बैठी और बर्फी खाने से इंकार करती रही। रात के सन्नाटे में चूड़ी खनक न जाए, सो सुखराम ने भँवरी की चूड़ियाँ बांध दीं। झांझन, लच्छे उतार के धर लिए। जब वह घबराकर चिल्लाई तो उसके पति ने मुंह पर हाथ रखकर उसकी आवाज बंद कर, अपने पहले स्पर्श का परिचय दिया" [1]।

सांसारिक जंजाल में फँसती जा रही भँवरी पर पहाड़ तब टूट पड़ा जब उसका पति अपनी जाती से ऊंची ठकुराइन के पास जाने लगा और उसके साथ अपना संबंध स्थापित करने लगा। वह जब भी ठकुराइन के पास जाता तो भँवरी को भी अपने साथ ले जाता, वह अपने बच्चों के साथ बाहर बैठती और उसका पति अंदर ठकुराइन के साथ होता। वह इस डर से बाहर बैठ पहरा देती कि जाती से बड़ी ठकुराइन कही उसके पति के साथ अनहोनी ना कर बैठे। "वैसे तो इस डर की दहलीज पर इन दो औरतों की मुलाकात हुई। पर ज्यों-ज्यों वे एक-दूसरे के नज़दीक आने लगीं उसकी पहचान पड़ोस और बाज़ार में भी बनने लगी। एक जो जाती काजल-टीकी लेने वह थी छोटी, बहुत खूबसूरत और जो जाती नामक, लूण, मिर्च लेने वह थी बड़ी, कुछ साँवली, साधारण सी"[2]। माया शर्मा बताती है कि "भँवरी का हँसता हुआ चेहरा देखकर मैं कुछ हैरान हो गई। मैंने पूछा, 'तो तुम्हें ठकुराइन से ईर्ष्या नहीं होती थी ? 'नाही', जोर देकर कहा उसने, 'वो तो देखने में रोबीली, डिल-डौल की मेरे से भी बड़ी अच्छी" [3]। बढ़ते समय के साथ दोनों एक-दूसरे के करीब आई। दोनों के गाढ़े रिश्ते के बीच अब कोई नहीं था। उनकी अपनी दुनिया और अपना ही संसार बन रहा था। "घर की चौखट पर बैठी भँवरी और अंदर सोती ठकुराइन रसोईघर में मिल बैठने लगीं। इस गाढ़े होते रिश्ते से जात-पात का रंग कब उतरा पता नहीं चला। अंदर से दरवाजा बंद करके एक के हाथ चूल्हे में लकड़ी दे आंच देखते तो दूजी के बेलन के नीचे रोटी घूमती। इस तरह दोनों की दोस्ती बढ़ने लगी। बाहर सुखराम का नाम मिट गया और अंदर ही अंदर इन दो औरतों की दोस्ती धरती में समाई जड़ों की तरह पसरने लगी। पीठ

मलती, बालों में तेल लगाती वे आपस में चोटी-सी गूँथ गई। दुलार से एक-दूजी को देखना-दिखाना छूना-छुआना खूब अच्छा लगता, दोनों को। सुख से आँखें मिंचती चली जातीं। पाँव पे पाँव धर, छाती से छाती लगाकर यों साथ सोती इन दो औरतों के दुख-सुख से भरे रिश्ते को क्या कहेंगे ? तन-मन के मेल में बहते ये एहसास नपे-तुले शब्दों की पकड़ से बाहर है"[4]।

उसने जीवन के तमाम उतार-चढ़ाव को देखा। जीवन के छोटे-बड़े कई अनुभवों से गुजरी भँवरी के लिए उसकी साथिन से बढ़कर कोई नहीं था। भँवरी कहती है कि "सहेलियन का रिश्ता सबसे अच्छा, जो इसे समझो। और भँवरी ने खूब समझा इस रिश्ते को। एक ही सांस में ठकुराइन को गाली देकर फिर उसे इतना याद करती कि आवाज धीमी होते-होते गुम हो जाती। अपना बायां हाथ आगे करके उंगली से अपने हाथ में गोदे हरे अक्षरों को दिखाकर बोली,'मेरी दोनों सहेलियों के नाम ये बामनी का और ये ठकुराइन का'। लेखिका कहती है-'पर ये नाम तो पढ़े नहीं जाते ?' अपनी बाजू मेरी हथेलियों से खिंचकर अपनी आँखों के बहुत करीब लाकर गौर से देखते हुए बोली,'चमड़ी सिकुड़ जाए पर सहेलियाँ की याद नाहीं सिकुड़े। लेखिका पूछती है-'तीसरा नाम किसका है?' भँवरी कहती है- 'आदमी का है। मांडने वाले ने मांड दिया। भाई-बहन, मां-बाप, आदमी, पर सहेली से बढ़कर कोई ना'। आज भी, जब भी गाँव जाती है तो ठकुराइन से मिलकर लौटती है"[5]।

2. कस्तूरी कुण्डल बसै (2002) : मैत्रेयी पुष्पा

मैत्रेयी पुष्पा और उनकी माँ के बीच की कहानी है 'कस्तूरी कुण्डल बसै'। कहानी मैत्रेयी पुष्पा और उनकी माँ कस्तूरी के बीच की है लेकिन इन दोनों के अतिरिक्त गौरा एक ऐसी पात्र है जिसकी मौजूदगी अंत तक बनी रहती है। यहाँ इस औपन्यासिक आत्मकथा के उस पहलू की चर्चा की जा रही है जिसने मैत्रेयी पुष्पा की माँ 'कस्तूरी' और उनकी सखी, साथिन, सहेली 'गौरा' को एक-दूसरे के बेहद करीब किया।

कस्तूरी आज़ाद ख़यालात की महिला है जिन्होंने विवाह से पूर्व और विवाह के पश्चात् कई संघर्ष झेले पर वह हारी नहीं और चलती रही आगे बढ़ती रही।

मां कस्तूरी और मैत्रेयी दोनों को ही समाज द्वारा बने-बनाए नियमावलियाँ स्वीकार्य नहीं थे। एक तरफ वह समाज की नग्न सच्चाई को उजागर करती हैं तो दूसरी तरफ अपनी-अपनी सिद्धांतों पर चलकर परिवर्तन का नया मार्ग भी प्रशस्त करती हैं। न चाहते हुए भी कस्तूरी को परंपरा के नाम पर दलदल में ढ़केल दिया जाता है। रीति-रिवाजों के मुताबिक उसका विवाह कर दिया जाता है। परंपरा के नाम पर शोषित की जाने वाली कस्तूरी को अपनी यह नियति किन्तु स्वीकार्य नहीं थी। कस्तूरी अपने जीवन को अपने शर्तों पर और मैत्रेयी अपने शर्तों पर जीना चाहती थी।

मैत्रेयी पुष्पा के औपन्यासिक आत्मकथा ‘कस्तूरी कुण्डल बसै’ में उनके जीवन के अनछुए पहलुओं तथा माँ कस्तूरी और उनकी सहेली गौरा के बीच के अंतरंग संबंधों का ताना-बाना दिखाई देता है। “महिला मंगल में किसी पुरुष का समागम कस्तूरी देवी के हिसाब से अपराध था, बदनीयती थी, लेकिन यहाँ तो हाथ में हाथ लेने-देने का दृश्य था, रात के समय एक खटिया पर शयन.. मैत्रेयी तब ऐसी बच्ची थी, जो ऐसी बात की मूक दर्शक बनी रहे, क्योंकि मिलन सम्मिलन का आधा-अधूरा डरावना भयावना ज्ञान था” [6]। मां कस्तूरी को पुरुषों का सानिध्य नहीं भाता था और वह गौरा के बेहद करीब थी। गौरा उनकी सुख-दुख की साथी थी। उन दोनों के संबंधों के विषय में कलावती चाची कहती है “आजाद बछेड़ी गौरा के संग मौज कर रही है। खसम-लुगाई हो गई दोनों” यह सब सुनकर “मैत्रेयी टुक-टुक औरतों को देखती है। सपने जैसी बीती रातें दिन में ही दिखने लगती हैं- माताजी की खाट से उसे गौरा ही उठाकर दूसरी खाट पर डाल देती थी। नींद टूटने पर दिखता कि उसकी जगह गौरा माताजी के संग सो रही है। मैत्रेयी के छोटे से सीने में गौरा सांपिन बनकर रोज उतरने लगी” [7] और इस बात के ध्यान में आते ही कि मैत्रेयी भी वही मौजूद है कलावती चाची

बात को बदलते हुए कहती है-" जिंदगी सुधार दी गौरा की, इन बातों में क्या धरा है? नहीं तो घूँघट पर सेर-भर मक्खी भिनकतीं। आज देखो कि झकाझक कपड़ा पहनकर पटवारिन बनी डोल रही है"[8]।

मैत्रेयी मां कस्तूरी तथा गौरा के बीच के संबंधों को अब धीरे-धीरे समझ रही थी। "बरहन गाँव का दृश्य याद है मैत्रेयी को। वह माताजी के संग गई थी। ग्रामसेविका गौरा का कमरा बंद मिला था-ताला बंद। माताजी को बैठने की जगह नहीं। गली में खुलनेवाली बैठक के द्वार पर खड़ी माताजी को देखकर पड़ोसिन चाबी ले आई। उसने ताला खोला और खोलीं बहुत-सी गोपनीय बातें। माताजी का साँवला चेहरा बिगड़ने लगा। गौरा से मिलने का चाव नाक से गर्म भपारे बनकर उड़ने लगा। सच्चा साथ लड़खड़ाया, विश्वासघात ने ऐसी ठोकर मारी। कमरे में बेसिलवट बिस्तर था, माताजी की सांस तनिक थिर हुई। बक्स-अटैची अपनी पूर्वावस्था में थे, उसने भी इत्मीनान दिया। मगर दाएं हाथवाले कोने की खूंटी पर मरदाने कपड़े, पैंट और कमीज....मानो दो जेहरीले नाग लटक रहे हों, कि उन दोनों कपड़ों को धारण किए हुए व्यभिचारी पुरुष से माताजी का सामना हुआ हो"[9]।

मैत्रेयी अपनी मां कस्तूरी और गौरा के बीच के समलैंगिक संबंध को दिखाती है। किन्तु कस्तूरी के समलैंगिक संबंध को उनके स्वतंत्र यौनिक अभिरुचि के रूप में नहीं अपितु एक विधवा स्त्री द्वारा अपने सेक्स इच्छा को दमित कर मजबूरन अपनी इच्छाओं-आकांक्षाओं को समलैंगिकता में तलाश करती हुई दिखाती है। निश्चित रूप से मैत्रेयी चाहती है कि स्त्री के जीवन के तमाम प्रश्नों और मानदंडों को तय करने का अधिकार स्वयं स्त्री के पास होना चाहिए। वह यौनाकांक्षा के प्रश्न को भी उठाती है तथा निर्धारित चौखटों को अस्वीकार भी करती है। विवाह व्यवस्था को नकारती तो नहीं परंतु उसमें स्त्री की इच्छा और उसके जीवन के हर फैसले में उसकी भूमिका को सर्वपरी तो मानती है किन्तु स्त्री के स्त्री से सहज और स्वाभाविक आकर्षण को स्वीकार करती नहीं दिखती। उनके अनुसार समाज तथा पितृसतात्मक व्यवस्था से शोषित

और दमित स्त्री समलैंगिकता की ओर मुड़ती है। वह क्रोध में कह ही जाती है "माँ से कौन-सी सीख लूँ ? यही न कि मर्द की जगह कोई औरत ढूँढ़ लूँ !"[10]।

3. लविंग वुमेन : बींग लेस्बियन इन अनप्रिविलेजड इंडिया (2006) : माया शर्मा

माया शर्मा की पुस्तक 'लविंग वुमेन : बींग लेस्बियन इन अनप्रिविलेजड इंडिया' में कामकाजी क्वीयर स्त्रियों की ज़िंदगी से जुड़ी कहानियां हैं जिनका सम्बन्ध उत्तर भारत से है। इस पुस्तक में दस कहानियां संकलीत हैं। ये कहानियां अपने होने को दर्ज करती हुई उस सोच पर प्रश्नचिन्ह लगाती है जो समलैंगिकता को अक्सर पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित कहकर नकार देती हैं।

माया शर्मा द्वारा लिखित पुस्तक 'लविंग वूमेन' एक-दूसरे के साथ रहने वाली स्त्रियों की जीवनियां हैं। यह पुस्तक उन समलैंगिक स्त्रियों के जीवन के बारे में है जिनका संबंध मजदूर वर्ग से है। पुस्तक में लिखित तथ्य भेंटवार्ता पर आधारित है। यह पुस्तक इस बात को खारिज करती है कि सभी समलैंगिक लेस्बियन महिलाओं का संबंध पाश्चात्यीकृत, उच्चवर्ग, मध्यम वर्ग व शहरों से है। इन कहानियों का संबंध वास्तविकता से है, यथार्थ से है और हमारे इसी समाज से है। जिसे बड़ी बेबाकी से माया शर्मा और उनके सहयोगियों ने सामने लाया। माया शर्मा लिखती है-'हम ऐसी परिस्थितियों का सामना कर रहे लोगों को भावनात्मक समर्थन देने के लिए प्रतिबद्ध थे'।

लेखिका के लिए इन महिलाओं का 'जीवन-वृत' जानना आसान नहीं था। उन्हें व उनके सहयोगियों को इसके लिए एक कठिन रास्ता तय करना पड़ा। माया शर्मा पुस्तक की भूमिका में लिखती है कि "इस परियोजना के दौरान हमने सामाजिक, पारिवारिक व सामुदायिक इंकार के जिस स्तर का सामना किया, साथ ही साथ अनेक महिलाओं द्वारा उनके समलैंगिक संबंधों को 'महिला मित्रता' के रूप में आग्रहपूर्ण वर्गीकरण किया जाना, इन सबको टाल-मटोल व छुपाव के रूप में देखा जा सकता है, हालांकि ये दृश्यमान असत्य वास्तव में आस्तित्ववान सत्य हैं। और कोई बात नहीं कि कभी-कभार हम कितने निराश हो गए

जब हमारे ही सामने दरवाजों को बंद कर दिया गया, कोई बात नहीं कि स्पष्ट इंकार पर हम कितना उत्तेजित ही उठते थे, हमने स्वयं को प्रतिबद्ध किया हुआ था कि जो कुछ भी दर्ज किया जाना संभव था, उसे दर्ज किया जाए- चाहे वो खंडन हो या अभिपुष्टि व वे परिस्थितियाँ एवं संदर्भ जिनमें उनका मूल था, क्योंकि यह आधारभूत सच्चाइयों का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करने के लिए एक मात्र मार्ग था" [11]।

पहली जीवनी - पहली जीवनी गुड्डी और आँसू के जीवन से संबंधित है। गुड्डी और आसू एक-दूसरे से प्रेम करती है और साथ-साथ रहना चाहती है। गुड्डी की माँ गुड्डी के समलैंगिक प्रवृति का कारण उसकी सहेली आसू को समझती रही और यह सोचकर उसका विवाह कर देती है कि वह बदल जाएगी। किन्तु कुछ ही दिनों में गुड्डी वहाँ से भागकर अपनी माँ के घर वापस आ जाती है। आस-पास के लोग उसपर हँसते हैं, उसे प्रताड़ित करते हैं किन्तु तमाम कठिनाइयों के बावजूद गुड्डी और आसू एक-दूसरे से मिलती-जुलती रही।

अंततः गुड्डी की माँ उसकी इन प्रवृतियों को देखते हुए गुड्डी के पति के साथ उसकी छोटी बहन का विवाह करवा देती है। और गुड्डी तथा आसू कुछ संभालकर किन्तु लोगों की नजरों से बचकर साथ-साथ रहने लगी।

दूसरी जीवनी - दूसरा अध्याय रेखा व डॉली के संबंध में है। सन् 2001 में, अपने घर इंदौर से भागकर रेखा व डॉली गुजरात के दाहोद पहुंचकर एक-दूसरे से विवाह कर लेती हैं। दोनों वहाँ से भागकर पुनः पंजाब गई तथा वहाँ 'राधा-स्वामी सत्संग' नामक एक संप्रदाय में शरण लेकर वही रहने लगी। किन्तु परिवार वालों के पुलिस में रिपोर्ट लिखवाने के बाद पंजाब से उन्हें पकड़ लिया गया तथा उन्हें उनके परिवारों को सौंप दिया गया।

तीसरी जीवनी - तीसरी कहानी विमलेश से जुड़ी है। 'तारागढ़' की विमलेश एक 'ट्रांसस्त्री' है। जन्म के समय उसे लड़की की पहचान मिली किन्तु वह स्वयं को लड़की नहीं बल्कि लड़का मानती है। वह पुरुषों

(सामाजिक अवधारणा के अनुकूल) का पोशाक पहनती थी। विमलेश ब्राह्मण परिवार से है। ट्रांसस्त्री होने के कारण विमलेश हाशियाकृत जीवन जीने के लिए विवश थी। किन्तु इसके बावजूद निम्न मानी जाने वाली जातियों और लोगों के प्रति उसमें पूर्वाग्रह था।

वह स्वयं को पुरुष जेन्डर के रूप में संबोधित करती। पाँच भाई-बहनों के बीच पली-बड़ी विमलेश उनसे बिल्कुल अलग थी। विमलेश की माँ लेखिका और उनके साथियों को बताती है कि ‘यह तो बचपन से ही निराली है। फ्रॉक पहनाते तो उसे काट देती। पैन्ट- शर्ट ही पहनती’। वह घर से बाहर के काम को खूब चाव से करती थी। उसे किसी तरह के शादी समारोह में जाना बिल्कुल नहीं भाँता। लोग उसके पहनावे के कारण उसे पुरुषों के साथ जाने को कहते। यही कारण था कि विमलेश को एकांत अधिक प्रिय था। बचपन से ही वह लड़कों के बीच रहना पसंद करती। वह स्पष्ट शब्दों में कहती है कि वह स्वयं को आदमी मानती है और उसे औरतें अच्छी लगती है। विमलेश यह भी कहती है कि जैसे उसने अपने कपड़ों को बदल लिया है वैसे ही वह अपने शरीर को भी बदलना चाहती है।

लेखिका और उनके समूह द्वारा पूछे जाने पर वह बताती है कि भरतपुर में रहने वाली ज्योति से वह प्रेम करती है। जिससे मिलने के बाद उसने प्रेम की गहराई को करीब से समझा। दोनों एक-दूसरे को प्रेम करते है किन्तु पारिवारिक दबाव के कारण ज्योति विवाह कर लेती है।

इसके बाद विमलेश के जीवन में कनक का प्रवेश होता है। कनक उसकी बहन के जेठ की बेटी है। दोनों को एक-दूसरे से प्रेम हो जाता है किन्तु सामाजिक मान-सम्मान के कारण कनक किसी और से सगाई कर लेती है।

चौथी जीवनी - यह सोलह वर्षीय मेनका तथा पंद्रह वर्षीय पायल की कहानी है। सन् 1999 में पायल और मेनका एक-दूसरे के साथ रहने के लिए अलवर से अजमेर भाग गई। किन्तु परिवार वालों के रिपोर्ट लिखवाने के कारण पकड़ी गई और उन्हें उनके घर भेज दिया गया।

किन्तु घटना के जांच-पड़ताल के दौरान लेखिका व उनके सहयोगियों के सामने मेनका, पायल के साथ के अपने प्रेम संबंध से पूरी तरह मुकर जाती है। प्रारंभ में वह अपने प्रेम संबंध को खुलकर व्यक्त करती है। पायल भी बड़े स्पष्ट शब्दों में बताती है कि वह और मेनका एक-दूसरे से प्रेम करती हैं और इसीलिए दोनों अजमेर भागे थे। किन्तु अंत में मेनका इस संबंध को पूरी तरह इनकार कर देती है।

पांचवी जीवनी - होमगार्ड यूनिट में काम करने वाली मंजुला और मीता को आस-पास के लोग 'मियां-बीबी' जोड़ी मानते थे। यह जीवनी इन्हीं दोनों के जीवन से जुड़ी है। माया शर्मा को इनकी सूचना 'महिलाओं के खिलाफ हिंसा' पर आयोजित एक कार्यशाला में प्राप्त हुई।

मंजुला और मीता दोनों विवाहित स्त्रियां थी। दोनों का संबंध-विच्छेद हो चुका था। दोनों एक-दूसरे से पहली बार इसी होमगार्ड यूनिट में चल रही ट्रैनिंग के दरमियान मिली था। मीता का तौर-तरीका व पहनावा मर्दाना था। समाज के चले आ रहे तौर-तरीके तथा पारंपरिक संदर्भ से वह भिन्न थी। अर्थात् समाज द्वारा प्रदत्त स्त्री जेन्डर मानकों के प्रतिकूल। इसके विपरीत मंजुला का भाव-व्यवहार बिल्कुल गंभीर था। दोनों साथ रहती। उनके रिश्ते को पति-पत्नी के रिश्ते के रूप में देखा जाता था। मीता ने अपने और मंजुला के बीच के रिश्ते को केवल दोस्ती करार दिया। बेशक मंजुला ने उनके रिश्ते के अंतरंगता की भाव की ओर संकेत किया किन्तु दोनों में से किसी ने अपने संबंधों को लेकर कभी कोई स्पष्ट बात नहीं की। दोनों समाज के नजरों से अपने इस संबंध को ढ़ककर रखना चाहती थी। समाज को इनकी जोड़ी इसीलिए नहीं चुभी क्योंकि इन्होंने हमेशा अपने यौन-संबंधों से इनकार किया है।

कुछ समय पश्चात मंजुला, मीता पर कड़वे आरोप लगते हुए उससे अलग होने की बात बताती है किन्तु कुछ समय पश्चात अपने इस अलगाव के फैसले पर अफसोस जाहीर करती है और अंततः फिर से उसे अपने जीवन में वापस लाना चाहती है। लेखिका इस जीवनी के अंत में लिखती है कि उन्हें अंत में यह पता न चल सका कि वह दोनों साथ हुई या नहीं।

छठी जीवनी - यह शीला की जीवनी है। शीला दो भाइयों और पाँच बहनों में सबसे छोटी है। दस-बारह वर्ष की उम्र तक उसका नाम अनुराधा था किन्तु उसके बाद उसने अपना नाम बदलकर 'शीला' रख लिया। कद-काठी और भाव-व्यवहार में तयशुदा स्त्रियों के सामान्य वेश से बिल्कुल भिन्न थी। पैन्ट-कमीज पहनती और बाल छोटे रखती। लेखिका व उनके सहयोगियों को बताती है कि बचपन से ही लड़कियों की ओर आकर्षित होती रही है। वह बताती है कि उसे इन रिश्तों के संबंध में तब कुछ भी पता नहीं था। शशि, भावना, लाली व मंजू आदि कई स्त्रियों के साथ संबंध में रह चुकी है। शीला को किसी एक रिश्ते में बांधकर रहना स्वीकार नहीं था। यही कारण था कि बार-बार उसके संबंध टूटते चले गए। वह कहती भी है कि 'मैं आजादी से जीना चाहती हूँ'।

सातवीं जीवनी - यह सबो और रज़िया की जीवनी है। सबो व रज़िया के अंतरंग संबंधों, दोनों के प्रेम व भावनात्मक सहयोग व संबंध की कहानी है। ऐसी साधारण, सीधी-सदी और संघर्षशील स्त्रियों की कहानी जिन्हें माया शर्मा व उनके सहयोगियों से मिलने से पहले ना तो 'समलैंगिक संबंधों' का आशय ज्ञात था और ना ही 'लेस्बियन' शब्द से वह रूबरू थी। भावनात्मक व शारीरिक दोनों स्तरों पर एक-दूसरे से जुड़ी थी। सुख-दुख के हर पल को उन्होंने एक-दूसरे से साझा किया था। सबो और रज़िया विवाहित स्त्रियां थी। सबो के चार और रज़िया के पाँच बच्चे थे।

सबो अपने और रज़िया के संबंधों पर चर्चा करते हुए लेखिका को बताती है कि क्यों उसने अपने रिश्तों को खुलकर व्यक्त नहीं किया। वे क्या कारण थे जिसने सबो और रज़िया को अपने संबंध को ढ़ककर रखने के लिए मजबूर किया। दोनों उन संघर्षों व पीड़ाओं की भी गाथा सुनती हैं जिसमें उन्हें अपने पतियों द्वारा शोषित होना पड़ा। कदम-कदम पर ठोकरे खानी पड़ी।

सबो उन दोनों के रिश्ते को सार्थक बताते हुए कहती है कि यह जबरन गढ़ा गया कोई संबंध नहीं था बल्कि जबरन तो वह रिश्ता था जिसे उसके परिवार वालो ने उसके पति के साथ जोड़ा था। वह बताती

है कि उसके और रज़िया के इस संबंध का कोई नाम हो सकता है या साथ जीने की कोई संभावना भी हो सकती है, वह दोनों तो इस बात से अवगत तक नहीं थी। अगर वह जानती थीं तो बस इतना कि जिंदगी भर साथ-साथ रहें। किसी भी पुरुष से विवाह किये बगैर।

आठवीं जीवनी - यह जीवनी 'गोमेधपुर' नामक एक छोटे से गाँव में रहने वाली 'मैरी'की है। मैरी आदिवासी ईसाई महिला है जिसके पाँच बच्चे हैं। पति की मृत्यु के बाद वह एक स्थानीय महिला समूह में शामिल हुई और वहीं काम करने लगी। इसी महिला समूह में उसकी मुलाकात एक महिला से होती है और वह दोनों एक-दूसरे के करीब आती हैं। वह कहती है- "जैसे-जैसे हम एक-दूसरे को जानते गए, हम पक्के दोस्त बनते गए। हम इतने करीब आ गए कि हमने हर चीज साझा की-हंसी व आँसू, रोजमर्रा की जिंदगी,हर चीज जो हमारे साथ हुई। ऐसा कुछ नहीं था जो हमने एक-दूसरे को न बताया हो। हम रोजाना एक-दूसरे से मिलन चाहते थे" [12]।

जिस स्त्री से मैरी प्रेम करती थी वह भी विवाहित थी। दोनों अक्सर साथ-साथ रहती कभी मैरी उसके यहाँ चली जाती तो कभी वह मैरी के यहाँ आ जाती। जिस समूह में वह दोनों काम कर रही थी उस समूह को उनका साथ पसंद नहीं था। वह कहती है कि "मैं और मेरी दोस्त दोनों यह महसूस करते थे कि लोग केवल पुरुष-महिला रिश्तों का ही समर्थन करते हैं। इन्हीं को मान्यता मिली हुई है। सबसे ज्यादा वैद्यता शादी के रिश्ते को दी जाती है" [13]। इन्हीं मान्यताओं के कारण मैरी की मित्र मैरी को अपने ही पति से विवाह करने का सुझाव देती है जिससे कि वह दोनों सद्य साथ- साथ रह सके। किन्तु मैरी उसके पति से विवाह के लिए तैयार नहीं होती। समूह के द्वारा विरोध और तमाम गलतफहमियों के कारण वह अंततः एक-दूसरे से अलग हो जाती हैं।

नौवीं जीवनी - यह जीवनी 1962 ई में एक छोटे से गाँव के एक ईसाई परिवार में जन्मी 'जूही' से संबंधित है। जूही एक समलैंगिक महिला है, वह 'लूसी' नामक एक महिला से प्रेम हरती है। वह एक-दूसरे से उस

समय मिली थीं जब जूही दसवीं कक्षा में पढ़ती था। वह लूसी से मिलने के पूर्व भी महिलाओं के प्रति आकर्षित होती थी किन्तु ‘समलैंगिकता’ जैसे विषय से अवगत नहीं थी। उससे मिलकर ही वह इस विषय के बारे में जान पाती है।

दसवीं के बाद लूसी नर्सींग कॉलेज में दाखिल लेकर वहाँ से चली जाती है जहां जाकर किसी अन्य महिला के साथ उसके संबंध स्थापित हो गए जिसके कारण जूही और लूसी के बीच दूरियाँ बढ़ गई और वह दोनों एक-दूसरे से अलग हो गई।

कुछ समय बाद जूही की मुलाकात शशि नामक एक स्त्री से होती है और वह दोनों एक -दूसरे से प्रेम करने लगती हैं किन्तु शशि के परिवार वाले जबरन उसका विवाह कर देते हैं और इस तरह जूही पुनः अकेली हो जाती है। सामाजिक निंदा, विवाह की वैद्यता, स्त्री-पुरुष संबंधों के मान्यता को देखते हुए जूही ने भी एक पुरुष से विवाह कर लिया। उसकी तीन बेटियाँ हुई। तीनों ही समलैंगिक थी। जूही लगातार इस विवाह में हिंसा की शिकार होती रही जिसकी साक्षी उसकी तीनों बेटियाँ थी। अंततः उसने इन परिस्थितियों के कारण अपने पति से अलग होने का निर्णय लिया और अपनी बेटियों के साथ अलग रहने लगी।

दसवीं जीवनी - यह जीवनी हसीना बानो और फातिमा के गहरे संबंधों को व्यक्त करती है। यहाँ आपसी समझ और भावनात्मकता का गहरा जुड़ाव तो दिखता है किन्तु सबकुछ साफ-साफ व्यक्त नहीं होता। माया शर्मा इस जीवनी के संबंध में लिखती है कि एक “ ऐसी कहानी जो, किसी एक सरल मायने व सुविधाजनक खाके में नहीं उतरती” [14]।

समाज के ताने-बाने में कई संबंधों की गुत्थियाँ अक्सर अनसुलझी ही रह जाती है। हसीना बानो का फातिमा के प्रति प्रेम और अधिकार तो झलकता है किन्तु बार-बार उसे तोपने और ढ़कने की एक साथ कोशिश भी दृष्टिगोचर होती है। ऐसा होना बहुत आश्चर्य की बात भी नहीं है। परंपरागत व सामाजिक दबाव की अभ्यस्त हो चुकी हसीना बानो की स्थिति लाजमी ही थी। माया शर्मा हसीना बानों के संबंध में लिखती

भी है कि “वह यह जानती थी कि सामाजिक कायदे-कानून तोड़ना एक खतरनाक कदम है जिसके वास्तविक जगत में व मानसिक स्तर पर गंभीर परिणाम हो सकते हैं। इसीलिए पारंपरिक ढांचों के नाम पर मिलती सुरक्षा को पा लेना, एक अहम जरूरत थी। इसलिए भी हसीना बार-बार शादी की व्यवस्था में जीने को सही तरीका बताती है” [15]।

4. इला (2009) : प्रभाकर श्रोत्रिय

‘इला’ प्रभाकर श्रोत्रिय की नाट्य रचना है। इस नाटक की रचना एक पौराणिक कथा पर आधारित है। ‘इला’ नाटक अपने अंतस में स्त्री और पुरुष प्रवृतियों के अंतर्विरोध की अभिव्यक्ति है। एक उलझन, तड़प और इससे बाहर निकलने की जद्दोजहद है।

यह ‘सुददुम्न’ की कहानी हैं। ‘इला’ से ‘सुददुम्न’, ‘सुददुम्न’ से इला और पुनः ‘इला’ से ‘सुददुम्न’ में रूपांतरण की कथा है। जिसका उल्लेख श्रीमदभागवत के नौवे स्कन्ध के प्रथम अध्याय में किया गया है। सुददुम्न की कथा का संक्षेप उल्लेख प्रभाकर श्रोत्रिय ने नाटक के प्रारंभ में किया है। जिसे यहां उन्हीं के शब्दों में उद्धृत कर रही हूँ-

विवस्वान (सूर्य) और संज्ञा के पुत्र थे मनु। मनु की पुत्र-प्राप्ति के लिए आचार्य वशिष्ठ ने मित्रावरूण देवताओं का एक यज्ञ (इष्टि) ‘पुत्रिकामेष्टि’ किया।

दुग्धाहार करने वाली मनु-पत्नी श्रद्धा ने होता से प्रार्थना की कि हे ऋषि, तुम इस तरह यज्ञ करो जिससे मुझे कन्या उत्पन्न हो।

ऋत्विज(अध्वर्यु) ने होता को उसी तरह के यजन की प्रेरणा दी। परिणामस्वरूप उस होता ने हवं के समय एकाग्रचित होकर, रानी की प्रार्थना के अनुरूप ध्यान करते हुए वाणी से ‘वषट्’ और मन से ‘वोषट्’ उच्चारण करते हुए आहुति छोड़ी।

होता के द्वारा उस तरह आहुति देने से यजमान (मनु) की इच्छा के विरुद्ध (श्रद्धा को) इला नामक कन्या हुई। उसे देखकर मनु खिन्न हुए ('नाति हृष्ट-मना' मन से अधिक प्रसन्न नहीं हुए) और उन्होंने वशिष्ठ ऋषि से कहा,'भगवन्, तुम ब्रह्मज्ञानियों द्वारा किया हुया यह (यजन) कर्म इष्टफल से विपरीत फल देने वाला कैसे हुआ ? यह बड़े दुख की बात है, क्योंकि मंत्र का फल इस प्रकार विपरीत नहीं होना चाहिए। ऐसा होने पर वैदिक कर्मों पर से लोगों का विश्वास उठ जाएगा और सन्मार्ग नष्ट हो जाएगा। आप मंत्रों के स्वरूप को जानने वाले हैं, जितेंद्रिय हैं, तपस्या के कारण आपके सारे पाप भस्म हो गए हैं-ऐसी स्थिति में आपके संकल्प का विपरीत प्रभाव कैसे हुआ ? जैसे देवताओं में असत्य नहीं होता वैसे ही आपके संकल्प का विपरीत फल नहीं होना चाहिए।

होता द्वारा विपरीत संकल्प लेने के बारे में ज्ञात होने पर वशिष्ठ ने श्राद्धदेव मनु से कहा कि- 'हे मनु, तुम्हारे होता का संकल्प विपरीत होने के कारण यह फल विपरीत हुआ है। तथापि मैं अपने तपोबल के प्रभाव से प्रयास करूंगा कि तुम्हारी पुत्री पुत्र बन जाए'।

वशिष्ठ ने 'इला' को पुरुष रूप में बदलने की कामना से आदि-पुरुष भगवान की स्तुति की। श्री हरी वशिष्ठ जी की स्तुति से संतुष्ट हुए और इला को पुरुष-स्वरूप प्राप्त होने का वरदान दिया। परिणामतः 'इला' 'सुददुम्न' हो गया।

सुददुम्न एक दिन मृगया के लिए वन में गया। उसने कवच पहन रखा था। उसके साथ अनेक मंत्री थे। सुंदर धनुष और प्रखर बाण थे। सैंधव अश्व पर सवार सुददुम्न मृग के पीछे-पीछे उत्तर दिशा की ओर गया और सुमेरु पर्वत की तलहटी के वन (अन्यत्र इसका नाम 'शरवण' मिलता है) में पहुँच गया। वहाँ शिव-पार्वती के साथ रमण कर रहे थे। उस वन में प्रवेश करते ही सुददुम्न ने यह अनुभव किया कि मैं स्त्री हो गया हूँ और मेरा घोड़ा भी घोड़ी हो गया था। शेष सभी साथी स्त्री हो गए और परस्पर एक दूसरे को देखकर खिन्न हुए।

‘उस पर्वत पर पहुँचने पर ऐसा क्यों हुआ?’ परीक्षित के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए शुकदेव जी ने कहा कि-‘एक समय महादेव जी के दर्शन के लिए महर्षि उस वन में गए थे। तब शिवजी की जंघा पर नग्न बैठी देवी अंबिका को अत्यधिक लज्जा आई। उन्होंने जल्दी से उठकर वस्त्र पहने। यह देखकर ऋषि भी शीघ्र वहाँ से लौट आए। तब प्रिया को प्रसन्न करने के लिए शिव ने कहा कि जो कोई पुरुष इस स्थान में प्रवेश करेगा वह स्त्री हो जाएगा।‘ इस भी से उस वन में कोई पुरुष प्रवेश नहीं करता था।

स्त्री हुआ सुददुम्न सेवकों के साथ विभिन्न वनों में भटकने लगा। उसे देखकर चंद्रमा के पुत्र बुध ने उस (स्त्री) की कामना की। उसने भी बुध की पति रूप में कामना की। वे पारस्परिक सहमति और इच्छा से दंपति हुए। उनको (इला एवं बुध को पुरुरवा नामक पुत्र हुआ। तब स्त्री हुए सुददुम्न (अर्थात्) इला) ने कुलगुरु वशिष्ठ का स्मरण किया। वशिष्ठ आए और सुददुम्न को स्त्री रूप में देखकर दुखी हुए। उन्होंने उसे पुरुष रूप में बदलने के लिए भगवान शंकर की स्तुति की। प्रार्थना से संतुष्ट होने पर भी शिव के सम्मुख अपने वचन की रक्षा का प्रश्न था। अतः उन्होंने वशिष्ठ जी से कहा कि आपकी कामना के अनुसार यह पुरुष हो जाएगा। लेकिन एक माह पुरुष और एक माह स्त्री रहेगा। इसी व्यवस्था से वह पृथ्वी की रक्षा करेगा।

इस प्रकार सुददुम्न पुरुष होकर राज्य करने लगा, फिर भी एक माह स्त्री होने के कारण वह लज्जा से छिपा रहता था। इस कारण प्रजा उससे संतुष्ट नहीं थी।

सुददुम्न के गय, उत्कल, और विमल (अन्यत्र विनताश्व) नामक तीन पुत्र हुए। वे दक्षिण के स्वामी और धर्म में प्रीति रखनेवाले थे। (अन्यत्र कहा गया है कि उत्कल को उड़ीसा, गय को पूर्व और विमल (विनताश्व) को पश्चिमी प्रदेश का राज्य- भार सौंपा गया था।) बहुत समय बा, वृद्ध होने पर, सुददुम्न अपने पुत्र पुरुरवा (जो उसके इला-रूप से उत्पन्न था) पृथ्वी का राज्याभिषेक करके तपस्या करने वन चले गए।[16]

लेखक ने कला, धर्म, विज्ञान-मनोविज्ञान से जुड़े अनेक चित्रों को बड़ी कुशलतापूर्वक चित्रित किया है। श्रीमद्भागवत में उल्लेखित इस कथा में परिवर्तन कर लेखक इस नाटक को सम-सामयिक बनाते हैं। स्त्री

से पुरुष में रूपांतरण व इससे उत्पन्न विवशता को नाटक के मध्यम से अपनी पूरी सूझ-बुझ के साथ वर्णित करते हैं।

प्राचीनकाल में अपनी इच्छा के अनुकूल वरदान प्राप्त करने के लिए यज्ञ किया और करवाया जाता था। नीति ग्रंथों के प्रणेता माने जाने वाले मनु निःसंतान थे। उन्हें अपने राज्य के लिए उत्तराधिकारी की आवश्यकता थी, जिसके लिए उन्होंने राजगुरु वशिष्ठ ऋषि से पुत्रकामेष्टि यज्ञ करवाने का अनुरोध किया। किन्तु उन्हें पुत्र के स्थान पर एक सुंदर पुत्री की प्राप्ति होती है। जिसके परिणामस्वरूप मनु क्रोधित व आक्रोशित हो जाते है तथा गुरु वशिष्ठ को इस यज्ञ हेतु अपमानित तक करते हैं। उन्हें इस यज्ञ का यह परिणाम किसी भी स्थिति में स्वीकार्य नहीं था। वह अपनी पुत्री इला को रासायनिक प्रयोगों की सहायता से पुत्र रूप में रूपांतरित करने की कामना कर राजगुरु वशिष्ठ को इस हेतु आदेश देते हैं। और यहीं से शुरू होती है तमाम विडंबनाएं।

मनु की पत्नी श्रद्धा के मन में इला के प्रति किसी तरह का कोई विरोधी भाव नहीं हैं। वह उसे पाकर बेहद प्रसन्न है। किन्तु मनु के आक्रोश व क्रोध को देख उसे समझने का प्रयत्न करती हैं। वह कहती है-" श्रद्ध -(कोमलता से) ..महाराज ! इतने हताश क्यों हो गए आप ? किसी लता में जब फूल उगना प्रारंभ होता है, तो क्या केवल एक ही फूल उगता है ? नारी की कोख जब उर्वर हो जाती है तो वह पूरा संसार रच सकती है। आज बेटी आई है तो कल बेटा भी आ जाएगा। मैं वचन देती हूँ कि श्रद्धा आपको अपना उत्तराधिकारी देगी" [17]।

मनु के लिए उत्तराधिकारी का प्रश्न अन्य किसी भी प्रश्न की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण था। मनु का मानना था कि कन्या की प्राप्ति से पूरे राज्य पर घोर संकट छा जाएगा। इसीलिए वह चाहते है कि रासायनिक प्रयोगों द्वारा राजगुरु वशिष्ठ इला का यौन-परिवर्तन कर उसे पुत्र रूप में रूपांतरण करें जिससे राज्य को उसका अपना उत्तराधिकारी प्राप्त हो सके। मनु के हठ को देख वशिष्ठ कहते है-

“शुक्राणुओं के अनुपात बदलने से यौन-परिवर्तन हो सकता है। औषधियां कर सकती हैं यह काम। परंतु....सुन लो, आकृति के साथ प्रकृति का पूरी तरह बदलना असंभव है” [18]।

इला के शरीर पर यौन-परिवर्तन हेतु रासायनिक प्रयोग किये जाने लगते हैं। प्रयोगशाला में चल रहे इस प्रक्रिया को सफल होता हुआ देख मनु कहता है-

“मनु- गुरुदेव, आपने तो चमत्कार कर दिया !

वशिष्ठ- औषध और मांत्रिक क्रियाएं सभी तो चल रही हैं। बाल-शरीर में शुक्राणुओं के अनुपात लगभग बदल गए हैं ....परंतु मैं अंतर्दृष्टि से स्पष्ट अमंगल देख रहा हूँ” [19]

द्वितीय अंक की शुरुआत इला के यौन-परिवर्तन के साथ होती है। अब इला एक पुरुष रूप में रूपांतरित हो चुकी है। जिसका नाम सुददुम्न है। और यहीं से आरंभ होता है सुददुम्न के अन्तः संघर्ष का दौर। प्रभाकर श्रोत्रिय के शब्दों में-

“नहीं। जो दिखता प्रत्यक्ष कहाँ पूरा सच होता

बाहर वह सुददुम्न भले हो पर अंतर में

सदा थरथराती है कोई दीप-शिखा-सी !

स्त्री के भीतर स्त्री का वध कर

पुरुष बनाया राज-दर्प ने !” [20]

इला अब सुददुम्न तो बन गई है किन्तु वह पुरुष के गुणों (तथाकथित पुरुष गुण) को सहज स्वीकार नहीं पाती। अब शरीर जरूर पुरुष का था पर मन ही मन वह नारी ही थी-

सुददुम्न बढ़ता रहा .... बढ़ता रहा ....

चढ़ता रहा सीढ़ियाँ उम्र की

खाता रहा हिचकोले

भीतर से खींचता था कोई मन

बाहर खींची जाती थी बांह ..” [21]

सुददुम्न बने इला की मनः स्थितियों व प्रवृतियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण दृष्टिगोचर होता है। सुददुम्न का मन हिंसा से कोसों दूर भागता है वह चाहकर भी अपनी कोमल कान्त प्रवृति को छोड़कर कठोर नहीं बन पाता। वह राजमाता श्रद्धा से कहता है- “ सुददुम्न- पता नहीं वे कैसे लोग होते हैं, जिन्हें निरीहों की हत्या में आनंद आता है ! सच कहूँ माँ, आखेट पर जाते हुए मेरा मन बैठने लगता है। ऐसी हिंसा में मेरी कोई रुचि नहीं है। मैं क्या करून माँ ? जाने क्या हो जाता है मुझे ? मन चाहता है, धनुष-बाण फेंककर फूलों से खेलूँ, लताओं से बतियाऊँ,(अभिनय सहित) हवाओं में उड़ूँ !” [22]। श्रद्धा, सुददुम्न के मन में चल रहें इन स्थितियों को पूर्णतः समझती है। क्या वह सुददुम्न के इस अंतर्विरोध को नहीं जानती ? क्या वह नहीं जानती सुददुम्न के कोमल-कान्त गुणों की ओर आकर्षण के रहस्य को ? निश्चित रूप से जानती है। किन्तु वह मजबूर है। उसी के शब्दों में- ओह ! कैसी यंत्रणा है तुम्हें मेरे बेटे, .. पर .. अब कुछ नहीं हो सकता .. कुछ .. (अपने को दृढ़ करते हुए तीखेपन से प्रकट)” [23]।

मनु के लिए राजनीति महत्वपूर्ण है तो सुददुम्न के लिए मानव नीति। महाराज मनु के तमाम कोशिशों के बावजूद सुददुम्न के मूल भावनाओं में किसी तरह का परिवर्तन न होता देख मनु कहता है- “(चिढ़कर) दो बातों को इस तरह मत मिलाओं सुददुम्न ! मूल्य, विवेक, विधि-विधान किसी पर भी राजनीति को भूल कर विचार नहीं किया जा सकता ; क्योंकि वही हमारी प्रभुसत्ता की धुरी है” [24] ।

इससे यह स्पष्ट होता है कि यौन-परिवर्तन कर उसे पुरुष रूप में परिवर्तित किया गया परंतु है वह एक स्त्री मन। और इस स्त्री मन का रूपांतरण किसी रासायनिक प्रक्रिया द्वारा संभव कत्तई नहीं है। सुददुम्न कहता है- “(अपने से बात करने के लहजे में) भीतर दो भाव .... दो व्यक्तित्व झगड़ते रहते हैं यह तो जानता हूँ .. .. । अनुभव करता हूँ तात ... पर भीतर कुछ और बाहर कुछ ... बड़ी कठोर साधना करनी पड़ती होगी न, इसके लिए ! अपने आप को दिया जाने वाला यह दंड ... ओह ... कितनी निर्मम है सत्ता ... ! मैं तो चाहता हूँ कि मनुष्य का मुख, मन का दर्पण हो ... क्या आपको मेरे हृदय की हलचल मुंह पर दिखाई नहीं देती ?”[25]।

यदि वरदान या श्राप जैसे पौराणिक आधार को छोड़ दिया जाये तो प्रभाकर श्रोत्रिय इस ओर भी संकेत करते है कि कैसे अक्सर भिन्न यौनिकता वाले व्यक्ति को पुरुष या तथाकथित सामान्य (Straight) व्यक्ति के रूप में रूपांतरण हेतु बेहद यंत्रणादायक तथा असहनीय उपचारों का प्रयोग किया जाता रहा है। तमाम चेष्टाओं के बावजूद सुददुम्न अनेक अवसरों पर राजसत्ता के समक्ष असहाय महसूस करता। सुमति से विवाह के बाद भी वह अपने भीतर के स्त्री-भाव को दबा नहीं पाता। समय-समय पर स्त्री-भाव प्रकट हो ही जाते। जिसे सुददुम्न व सुमति के बीच के वार्तालाप से भली-भांति समझा जा सकता है-

“ सुददुम्न - (अनुनय से) मैंने तुम्हारा ऐसा क्या बिगाड़ा है रानी ? सदा अपने व्यंग्य-बाणों से मुझे छेदती क्यों रहती हो तुम ?

सुमति - क्योंकि मैं देखना चाहती हूँ आपमें, अपना आत्म-सम्मान खोजना चाहती हूँ, अपने पत्नीत्व का अर्थ !

सुददुम्न - (भोलेपन से) तो क्या वह तुम्हें नहीं मिला मुझमें ?

सुमति - आपने ... मुझे, अपनी पत्नी को, कभी गहराई से यह अनुभव ही नहीं कराया कि उसका भी अस्तित्व है। आवेग के किनारे पहुंचकर थम क्यों जाते हो सहसा ? क्यों हो जाते हो बर्फ ? (वेदना से) मुझे लगने लगता है जैसे व्यर्थ है मेरा अस्तित्व, मेरा पत्नीत्व, यहां तक कि मेरा नारी होना" [26]।

तृतीय अंक में सुददुम्न के अपने मूल प्रकृति में लौटने का विवरण मिलता है। सुददुम्न आखेट खेलते हुए शिव-पार्वती के रंगभूमि सुमेरु पर्वत की ओर आगे बढ़ता हुआ इला रूप में रूपांतरित हो जाता है। मानो सारी कठोरता और ठोसपन पिघल गया हो- "(थोड़ी देर घूमता है । अंगों को छूते हुए) कैसे पिघल गया सारा ठोसपन ! कौन - सा रसायन घुला है यहां हवाओं में !... लता हो गई मेरी देह... चिकनी,... मोम जैसी ! (कमर को छूते हुए) कमर इतनी संकरी कैसे कैसे हो गई ? (अपने को सूंघते हुए) गंधों के फव्वारे ... मैं कस्तूरी मृग... मेरी नाभि में ही है कस्तूरी ... ! कैसी मादकता ... ! नाचने ... उड़ने का मन होता है"[27]। वह अपने को इस रूप में देखकर सोचता है कि यहीं उसकी वास्तविक पहचान है, वह मूलतः स्त्री ही है, यही उसकी अपनी अस्मिता है- " मैं, मैं ... इला हूँ। कहाँ से आ गई यहां (सोचने की मुद्रा) क्या देव-बाला हूँ ? गंधर्व-कन्या हूँ ? हुँह ... जाने दो ! कुछ याद नहीं ... इतिहास से कटी हुई मैं ; केवल 'मैं' हूँ। मैं इला हूँ ... केवल इला ... ! मैं स्त्री हूँ !! मैं प्रेम हूँ !!! मैं कोंपल की छुअन हूँ ; मैं आँख का अनजान हूँ। मैं संगीत हूँ। मैं कविता हूँ। मैं ..मैं हूँ ... इला ..." [28]। इला को राजकुमार बुध से प्रेम हो जाता है और दोनों एक-दूसरे से आकर्षित होते हैं और विवाह कर लेते हैं। इला, पुरुरवा नामक पुत्र को जन्म देती है। इला रूप धरण कर सुददुम्न को अपना मूल स्वरूप तो प्राप्त होता है किन्तु उसके भीतर का अंतर्विरोध व उथल- पुथल तब भी शांत नहीं होता। राजगुरु वशिष्ठ के शब्दों में- " हमने तुम्हारे यौन-परिवर्तन में सफलता पा ली थी। किसी सीमा तक प्रकृति ने तुम्हें उसके अनुरूप ढ़ाल दिया था, परंतु जिस समय तुमने अपनी पूरी शक्ति से उसे चुनौती देने की ठानी, ठीक उसी समय प्रकृति ने एक झटके में तुम्हारा वार लौटा दिया। तुम्हारा मुखौटा उतार फेंका और उघाड़ दिया वह रूप जो वास्तविक था, तुम्हारा अपना !" [29]। राजगुरु वशिष्ठ से अपनी

वास्तविकता जानकर इला की द्वन्द्वात्मक स्थितियाँ और बढ़ जाती है। वह इस यातना को सहन नहीं कर पाती। कह उठती ह-"इला (आह भरकर) लेकिन यह तो एक अलग ही तरह का द्वन्द्व मुनिवर ! मैं तो सदा दो स्तरों पर, दो तरह का जीवन एक साथ जीने की यातना भोगती रही हूँ, स्त्री और पुरुष के बीच झलती फींची जाती रही हूँ ! मैं प्रार्थना करती हूँ कि आप यहीं चीता बनाकर मुझे भस्म कर दें, ताकि पल-पल जलने की इस असहाय पीड़ा से तो छुटकारा मिल सके" [30]।

चतुर्थ अंक में इला पुनः सुददुम्न(पुरुष) रूप की प्राप्ति करती है, किन्तु विडंबना यह है कि उसे एक माह इला अर्थात स्त्री तथा एक माह सुददुम्न अर्थात पुरुष रूप का वरदान प्राप्त होता है। इला, सुददुम्न बन राज्याधिकार का भोग करती तो इला बन अपने कर्तव्यों का निर्वाह करती। नाटक के अंत में सुददुम्न अपने इला रूप से उत्पन्न पुत्र पुरुरवा को राज्य का उत्तरदायित्व दे स्वयं तपस्या के लिए वन चला गया।

नाटककार इस पौराणिक कथा को आधार बनाकर इस ओर संकेत करते है कि सहज और वास्तविकता को किसी भी आधार पर बदला नहीं जा सकता। महत्वाकांक्षी मनु, पुत्र की लालसा में यह भूल जाता है कि शरीर तो बदला जा सकता है किन्तु मन और उन प्रवृतियों को नहीं बदला जा सकता जो सहज और स्वाभाविक (यहां सहज और स्वाभाविक से आशय स्वयं द्वारा निर्धारित पहचान से है। वह समलैंगिक, विषमलैंगिक, ट्रांसजेन्डर, इन्टरसेक्स कुछ भी हो सकता है।) हैं। मनु की आकांक्षा का भूतभोगी सुददुम्न बना।

ऐसी ही यातना और अंतर्द्वंद्व की पीड़ा एक ट्रांसजेन्डर भी झेलता है जब उसका जन्म गलत शरीर में होता है और शरीर की बनावट तथा आकृति के आधार पर उसका वर्गीकरण कर दिया जाता है। नाटककार इस पौराणिक कथा का पुनः सृजन कर इसे आज के आधुनिक संदर्भ से जोड़ते हैं। संवेगात्मक, जैविक व मनोवैज्ञानिकता से जुड़े जटिल प्रश्नों को तर्कबद्ध करते है, मनुष्य के तथाकथित मान्यताओं तथा व्यवस्थाओं पर कुठाराघात करते हैं। चरित्रों का संवाद कई जगह जेन्डर से जुड़े पूर्वाग्रहों को खंडित करता नजर आता

है। सुददुम्न में आरंभ से लेकर अंत तक द्वन्द्व की स्थिति है। वह तमाम जरूरी प्रश्न उठाता है जो समाज संबंधित है। सामाजिक, धार्मिक व शास्त्रीय रूढ़ियों पर नाटक चोट करता है, विद्रोह करता है, जिसकी झलक श्रद्धा, सुददुम्न और वशिष्ठ में भलीभाँति देखी जा सकती है। अंत में प्रभाकर श्रोत्रिय ने इस सत्य को स्थापित करने का प्रयास भी किया है कि अपनी लैंगिक पहचान व चुनाव तथा उसके आधार पर किया जाने वाला यौन-परिवर्तन अब वैधानिक रूप से स्वीकार्य है। और इस वैज्ञानिक युग में यह सर्वथा संभव भी है। जिसके अनुसार पुरुष शरीर में जन्म लेने वाली ट्रांसस्त्री को स्त्री रूप में तथा स्त्री शरीर में जन्म लेने वाले ट्रांसपुरुष को पुरुष रूप में परिवर्तित किया जा सकता है।

5. मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी (2015) : लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी

सन् 2015 में लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी की आत्मकथा ‘मैं हिजड़ा ... मैं लक्ष्मी’ नाम से प्रकाशित हुई। लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी टीवी पर सबसे पहले ‘बुगी-बुगी’ कार्यक्रम में दिखने वाली, ‘एशिया पेसिफिक ट्रांसजेन्डर्स नेटवर्क’ के संस्थापकों में से एक, ‘बिटवीन द लाइंस’ डाक्यूमेंट्री व फीचर डाक्यूमेंट्री ‘बंबैया’ में, सलमान खान के साथ ‘दस का दम’ तथा ‘बिग बॉस’ रीऐलिटी शो में दिखने वाली बहु आयामी प्रतिभा सम्पन्न है। उनकी आत्मकथा को अपने शब्दों में व्यक्त करने का श्रेय ‘वैशाली रोडे’ को तथा हिन्दी में अनुवाद का श्रेय डॉ. शशिकला राय व सुरेखा बनकर को जाता है। समाज का मुख्य धारा ‘स्त्री और पुरुष’ जेन्डर को मानने और जानने वाला रहा है। और इन्हीं दोनों के इर्द-गिर्द सारी परम्पराएं और मान्यताएं गढ़ी गई हैं। किन्तु हमारे इसी समाज का हिस्सा अन्य जेन्डर तथा भिन्न यौनिकता वाले लोग भी रहे हैं। जिनकी ओर ना तो हमारी नजरें पहुँच पाती है और ना ही संवेदनाएं। ऐसे में भिन्न जेन्डर व यौनिकता से जुड़ी पहचाने हाशियाकृत जीवन जीने के लिए विवश हैं। एक लंबी लड़ाई के बाद जब ये पहचानें उभरकर सामने आ भी रही हैं तो अपने हौसलें और संवैधानिक अधिकारों के बदौलत। समाज में इन्हें अब भी वो सम्मान नहीं मिल सका है जो एक व्यक्ति होने के नाते मिलना चाहिए। इसी सम्मान को पाने एवं सहजता से जीवन

व्यतीत करने की इनकी लड़ाई अनवरत जारी है। किन्नर या ट्रांसजेन्डर होने के कारण एक बच्चे को सबसे पहले अपने ही परिवार और सगे-संबंधियों से प्रताड़ित होना पड़ता है। और यहीं से शुरू हुई अवहेलना समाज, संगठन, प्रशासन आदि का हिस्सा बनता चला जाता है। इसके विपरीत घर का साथ-सहयोग किन्नर या ट्रांसजेन्डर बच्चें को कैसे सफल और सामर्थ्य व्यक्ति बनाता है, इसका ज्वलंत उदाहरण है लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी। लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी की इस आत्मकथा के प्रस्तावना में वैशाली रोडे लिखती है कि " अलग लैंगिकता होने के बावजूद एक व्यक्ति को घर से सहारा मिलने पर वह क्या-क्या कर सकता है, इसका जीता-जागता उदाहरण पाठकों के सामने लाने की ये कोशिश है" [31]। "पर जिनके पास लक्ष्मी जैसा रूप, आत्मविश्वास, परिवार, अंग्रेजी भाषा, शिक्षा, समाज के बड़े बुजुर्गों से प्राप्त समान, दोस्ती, प्यार कुछ भी नहीं होता, उनकी काल-कोठरी कब खुलेगी ? लैंगिक भिन्नता के भी की उनकी उम्रकैद कब खत्म होगी?"[32]

जेन्डरीकरण केवल स्त्री- पुरुष का ही नहीं किया जाता बल्कि संस्कृति, कला, भाव, व्यवहार तक का कर दिया जाता है। स्त्री है तो फला गुण-व्यवहार युक्त होनी चाहिए और पुरुष है तो फला गुणों से परिपूर्ण होना चाहिए। जरा भी इन मानकों में हेर-फेर हुआ कि व्यक्ति को किनारे कर दिया जाता है। लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी कहती हैं- " नाचना यानी लड़की, औरत... ऐसा समीकरण हमारे समाज ने बनाया है। लोग मुझे बायक्या, छक्का, मामू ऐसा कहकर चिढ़ाने लगे थे। मैं नृत्य में अपनी बीमारी भूलने की कोशिश करता था, पर वो आसान नहीं था। मैं एक लड़का था और मुझमें जो कला थी, वो 'औरत' की थी ... और इसी वजह से समाज की नजर में मैं कलाकार न होकर, 'बायक्या' था ... नाचनेवाला था"[33]। किन्नर या भिन्न जेन्डर के रूप में जन्मे बच्चे के प्रति हमारे समाज में इतनी नकारात्मकता होती है कि भिन्न जेन्डर या यौनिकता वाले बच्चे में बचपन से ही शंका और नकारात्मकता घेरे रहती है। उसका अस्तित्व ही उसके लिए प्रश्नचिन्ह बन जाता है। यौन-शोषण का शिकार से लेकर, घोर विरोध का सामना, हमउम्र बच्चों से किसी तरह का कोई तालमेल न बीठा पाना, चली आ रही प्रवृतियों से स्वयं के भिन्न व्यवहार तक कई तरह की शंकाएं

पैदा करती हैं। लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी के मन में भी ऐसे प्रश्न घुमड़ रहे थे, वो कहती हैं “इस शरीर में ऐसा क्या है जो पुरुषों को मेरी ओर खींचता है ?... ऐसा क्यों ?” [34]। इन्हीं प्रश्नों से घिरा उनका अज्ञात मन बढ़ते उम्र के साथ अब यह समझने लगा था कि “मैं पुरुष हूँ और दूसरे पुरुषों से प्यार करता हूँ, ऐसा मुझे कभी लगा ही नहीं। मैं लड़की हूँ, ऐसा ही मैं सोचता था” [35]।

अमूमन समाज में एक किन्नर का जन्म होते ही परिवार वाले उसे किन्नर समुदाय को सौंप देते हैं। ऐसे बच्चों का घर-परिवार किन्नर समुदाय ही होता है। इसी समुदाय में पलटे-बढ़ते हैं। मृत्यु पर्यंत यह समुदाय ही इनके सुख-दुख का साथी होता है। किन्तु इस मायने में लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी की स्थिति इससे बिल्कुल उलट थी। अपनी आत्मकथा में वो कहती हैं-“मैं अलग था, फिर भी परिवार से दूर रहनेवाला नहीं था। मुझे परिवार चाहिए था, अपने लोगों की जरूरत थीं। दूसरी तरफ हिजड़ा समाज के इतिहास में मुझे बहुत-सी बातें दिखाई दे रही थीं और हिजड़ा बनने की मेरी चाहत और भी दृढ़ होती जा रही थी” [36]।

लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी ने अपनी आत्मकथा में बने बनाये कई पारंपरिक और सामाजिक ढर्रे को ढ़ाहने की चेष्टा की है। अपितु न केवल मुख्यधारा के समाज बल्कि हिजड़ा समाज में व्याप्त रूढी हो चुकी परंपराओं को भी चुनौती दी है। लता गुरु बार-बार कहती है “घर मत रहो, यहां हम हिजड़ो के साथ रहो। हमें जो बातें नहीं करनी चाहिए, वो बातें वहां घर में तुम्हे करनी पड़ती हैं। प्रमुख बात ये है कि हम सबको साथ रहना चाहिए। हम न स्त्री हैं, न पुरुष.....स्त्री -पुरुषों के समाज के नहीं हैं हम। क्यों रहना है फिर उनके साथ ?” [37]। लेकिन लक्ष्मी का मानना था कि “हम हिजड़े हैं, अगर इसका हौआ करने लगें, बाकी समाज से खुद को अलग मानने लगें, अलग बर्ताव करने लगें, तो समाज भी हमें अपना क्यों कहेगा। पर इन लोगों को यह बात नहीं जम रही थी ...”[38]। वह समझ रही थी कि परिवार और समाज से कटकर उसका हिस्सा नहीं बना जा सकता समस्याओं से भागकर नहीं बल्कि समस्याओं के साथ रहकर ही धीरे-धीरे स्वीकृति प्राप्त किया जा सकता है। लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी ने ना तो हिजड़ा समुदाय को छोड़ा और ना ही अपने

परिवार को। परिवार के प्रति अपने दायित्व को निभाते हुए समुदाय के लिए लड़ती रही। समुदाय का प्रतिनिधत्व करने के लिए देश से विदेश तक की यात्राएं करती रही। विदेश की यात्राओं से लक्ष्मी को दुनिया को देखने का एक व्यापक और समृद्ध नजारियाँ मिला। आत्मकथा में विदेश के यात्रा के दौरान के कई अनुभव, भिन्न जेन्डर और यौनिकता वाले लोगों से मिलना, दोस्तों और अपने निजी संबंधों तक का जिक्र करती हैं। एक जगह अमस्टर्डम में मिले क्रिस के संबंध में बात करते हुए बताती है कि " ट्रांसमैन था वो। पुरुष बनी औरत। उससे पहले मैं, स्टीफन और बाकी लोग मिलने गये ... जिंदगी में मैं पहली बार पुरुष हुई औरत देख रही थी ... ... मुझे पुरुष होने के बाद भी औरत होना चाहिए, ऐसा लगना जितना 'नॉर्मल' था, उतना ही किसी औरत को पुरुष होना चाहिए, ऐसा लगना 'नॉर्मल' हो सकता है, ये अपनाने के लिए मुझे दो दिन लगे। .. मुझे क्रिस मिला, तो एक पुरुष बनकर ही। पुरुषों के ही जैसा, बिल्कुल 'नॉर्मल' बर्ताव करनेवाला। मुझे देखते ही वो मुझसे प्यार करने लगा और मैं उससे" [39]।

अपनी आत्मकथा में लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी ने किन्नर जीवन से जुड़े कई पहलुओं के यथार्थ तथा किन्नरों के प्रति समाज में फैले पूर्वाग्रहों की चर्चा की हैं। जिसका उल्लेख उन्हीं के शब्दों में बिन्दुवार तरीके से किया जा रहा है-

(क)-सभी हिजड़ों का लिंगछेद हुआ रहता है, ऐसा माना जाता है। हमारे यहां उसे 'निर्वाण' कहते हैं। असल में 'हिजड़ा' शब्द का अर्थ ही यह बताया जाता है, पर वस्तुस्थिति वैसी नहीं है। लिंगछेद करना या ना करना सबकुछ उस हिजड़े पर निर्भर रहता है। उसे चाहिए तो वो करा सकता है, अगर नहीं कराता है तो कोई उस पर जबरदस्ती नहीं कर सकता। लिंगछेद किया गया 'सच्चा' हिजड़ा, न करानेवाला हिजड़ा उतना सच्चा नहीं, ऐसा माना जाता है। पर ये अफवाह है, जो समाज ने ही फैलायी है। हम ऐसा कुछ नहीं मानते।

(ख)-बीच-बीच में हिजड़े खबरों में आते हैं, कि उन्होंने किसी बच्चे को उठा लिया, ताकि उसे जबरदस्ती हिजड़ा बना सकें। ऐसे मामले की बहुत तटस्थता से जांच होनी चाहिए। 'हिजड़े ऐसा करते हैं, ये उनकी

कम्यूनिटी ने ही उनको बताया है ...' ऐसा लोग कहते रहते हैं। पर किसी भी समाज के नियमों में किसी को भी बुरा काम करने के लिए नहीं कहा जाता। हमारे समाज में भी ऐसा ही है।

(ग)- हिजड़े की मृत्यु होने पर उसे रात में देर से ले जाते हैं, और ले जाते समय सभी लोग उसे जूतों से मारते हैं, ये भी एक गलतफहमी है। और ये भी कि उसकी अंतिम यात्रा को कोई भी न देखे ... ये भी सब झूठ है। हिजड़े अलग-अलग धर्म से आते हैं। वो जिस धर्म के होते हैं, उसी के अनुसार उनका अन्त्य-संस्कार किया जाता है। उनकी भी अंत्ययात्रा बाकी लोगों की तरह ही निकलती है, पर हम उस अंतिम यात्रा में औरतों के भेस में नहीं जाते और इसीलिए ये हिजड़े हैं, ये लोगों के समझ में नहीं आता।

6. पुरुष तन में फंसा मेरा नारी मन (2018) : मानोबी बंद्योपाध्याय

'पुरुष तन में फंसा मेरा नारी मन' मानोबी बंद्योपाध्याय की आत्मकथा है। मानोबी बंद्योपाध्याय भारत की पहली ट्रांसजेन्डर हैं जिन्होंने अपनी मेहनत और संघर्ष के बल पर कॉलेज प्रिंसीपल के पद को हासिल किया। एक ट्रांसजेन्डर होने के नाते इस मुकाम तक पहुंचना मानोबी बंद्योपाध्याय के लिए बेहद कठिन रहा। जिस समाज में एक बच्चे का ट्रांसजेन्डर के रूप में जन्म लेना अपशकुन और हिकारत भरी दृष्टि से देखा जाता हो उस समाज में मानोबी बंद्योपाध्याय का उच्च शिक्षा ग्रहण करना और सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार प्राप्त करना फक्र तथा साहस की बात है।

मानोबी बंद्योपाध्याय का जन्म 23 सितंबर 1964 को हुआ था। चितरंजन बंद्योपाध्याय के परिवार में मानोबी बंद्योपाध्याय का जन्म दो बेटियों के बाद हुआ था। दो बेटियों सोनाली और रूपाली के बाद मानोबी बंद्योपाध्याय का जन्म पुत्र रूप में हुआ था जिसके कारण परिवार में उल्लास और हर्ष का माहौल चौतरफा फैल गया। माता रेखा और पिता चितरंजन बंद्योपाध्याय बेहद प्रसन्न थे। मानोबी बंद्योपाध्याय के "बचपन की पहली कुछ यादें, एक लड़के की हैं, जो अपने हमउम्र लड़कों से अलग नहीं था"[40]। जिसका नाम 'सोमनाथ' रखा गया। मानोबी बताती है- "लोग कहते हैं कि मुझे अपने पिता की सुंदरता विरासत में

मिली है और वे मुझमें अपने आप को देखते थे, शायद इसलिए भी मुझे उनका दुलार मिलता रहा। या फिर शायद इसलिए कि मैं उनकी पुत्र संतान थी ?आप जानते हैं कि भारतीय परिवारों में पुत्र संतान से कितना मोह रखते हैं। जब मैं हौले-हौले, उनकी नजरों के सामने किसी दूसरे रूप में बदलने लगी तो यह परिवर्तन सारे संसार को दिखा, पर मेरे पिता यथासंभव इस प्रसंग को अनदेखा करते रहें"[41]। सोमनाथ जैसे-जैसे बड़ा होता गया वैसे-वैसे उसे लगता गया कि वह लड़का नहीं बल्कि लड़की है। वह स्वयं को अपनी बहनों जैसा मानता। उसे लगता कि जैसे उसकी बहनें हैं वैसे ही वह भी एक लड़की है। लेकिन साथ ही भय भी सताता कि उसे लड़की रूप में कोई स्वीकार नहीं करेगा। वह बताती हैं- "एक बार मां ने मुझे अकेले में बीठा कर समझाना चाहा कि लड़का होकर, लड़कियों की तरह रहना और कपड़े पहनना; मेरा यह बर्ताव पूरे खानदान के लिए बदनामी का कारण बन रहा है। 'परंतु मां ! मैं एक स्त्री हूँ ....क्या आपको विश्वास नहीं आता ? क्या मुझे आप लोगों से बेहतर तरीके से कपड़े पहनने नहीं आते ? मां, आप मुझे एक लड़की बनने दो ..'। ....सारा संसार उन्हें ही दोष देने लगा था कि वे मुझे वक्ष में नहीं रख सकीं। बेचारी मां, लोग नहीं जानते थे कि वे किस तरह सदा स्वयं से जूझती और स्वयं को दोषी मानतीं कि उन्होनें एक हिजड़े को जन्म दिया ! जी, सारी दुनिया मुझे इसी नाम से बुलाने लगी थी"[42]। स्थितियाँ धीरे-धीरे बत से बत्तर होती गई। मानवीय सीमाओं का उल्लंघन होता चला गया। कॉलेज में पढ़ाने पहुंची मानोबी बंद्योपाध्याय को शोषण का शिकार होना पड़ा। कॉलेज यूनियन से जुड़े सूर्य और चंद्रेश नामक युवकों के उद्दंडता का उल्लेख करते हुए बताती है कि " वे मुझे एकांत में देखते ही घेर लेते, मेरे बाल और कपड़े नोचते और कहते कि वे देखना चाहते हैं कि मेरे बाल असली हैं या नकली हैं या मैंने नकली बालों की विग लगा रखी है ? एक बार, उनमें से दो लोगों ने मुझे दीवार से सटा कर खड़ा कर दिया। वे मुझे तो कर यह देखना चाहते थे कि मेरे कपड़ों के नीचे क्या था। वे मुझे देख कर फुफकारे और इस दौरान मुझे अपना मुंह बंद रखने की चेतावनी दी। उन्होंने मेरी छातियों के निप्पल इतनी ज़ोर से दबाए कि मेरी कराह निकाल गई। 'हिजड़े अपनी जुबान बंद रख। ज्यादा चतुराई मत झाड़। हम अभी पता कर लेंगे कि तेरी सही औकात क्या है' चंद्रेश ने कहा"[43]।

सोमनाथ से मानोबी बनी मानोबी बंद्योपाध्याय की मुलाकात कई ऐसे व्यक्तियों से हुई जिनसे उन्हें प्रेम हुआ। पर यह प्रेम सफल न हो सका। उन्हें वो सच्चा प्रेम न मिल सका जिसकी तलाश उन्हें हमेशा रही। देब के साथ अपने संबंध को याद करते हुए अपनी पीड़ा को व्यक्त करती है- “ देब को यह बताने का कोई लाभ नहीं था कि मैं एक स्त्री की आत्मा थी, जिसे पुरुष की देह में कैद कर दिया गया था और मैं वक्ष और योनि पाने के लिए तरस रही थी। मैं शारीरिक रूप से एक स्त्री बनना चाहती थी। परंतु वह इसे कभी नहीं समझ सका”[44]।

पुरुष तन में फंसा मानोबी का नारी मन हमेशा पुरुष को चाहता था। लोग यह नहीं समझ पा रहे थे कि मानोबी का जन्म बेशक पुरुष के शरीर में हुआ है लेकिन हमेशा वह स्वयं को स्त्री ही मानती रही। पुरुष के प्रति आकर्षित होने के कारण लोग मानोबी को समलैंगिक समझ रहे थे जबकि वह कहती है कि “मैं पूरी तरह निश्चिंत थी कि मैं कोई होमोसेक्सुअल नहीं, एक लड़की हूँ। मैं अपनी हमउम्र लड़कियों की तरह पुरुषों की ओर आकर्षित होती थी और उन्हें अपने साथी की तरह पाना चाहती थी”[45]। पुरुष तन में छटपटाते स्त्री आत्मा की पीड़ा केवल मानोबी समझ रही थी। वह चाहती थी कि जल्द से जल्द पुरुष शरीर को त्यागकर स्त्री शरीर में परिणत हो जाए। जिसके लिए उसने आर. जी. कर. मेडिकल कॉलेज, कोलकाता के चिकित्सा अनुसंधान से जुड़े इन्द्र दा का सहारा लिया। वह बताती है कि कैसे एक दिन “उनके सामने फुट पड़ी और मदद मांगने से पहले, उन्हें सब कुछ साफ तौर पर बता दिया। उन्होंने मेरी पूरी बात ध्यान से सुनकर कहा कि मुझे चिकित्सीय मदद की आवश्यकता थी। मैंने उनसे कहा कि मैं वास्तव में एक औरत हूँ, जो मर्द की देह में जन्मी हूँ और मैं अपने हालात से मुक्ति पाना चाहती हूँ। इन्द्र दा ने आर. जी. कर. मेडिकल कॉलेज के आउटपेशेंट क्लिनिक में मनोचिकित्सक के साथ मेरी मुलाकात का समय तय करवा दिया। मैं डरी और सहमी हुई थी, क्योंकि तब मेरी आयु बहुत अधिक नहीं थी और मैं अपने माता-पिता की जानकारी के बिना यह सब कर रही थी”[46]।

मानोबी बंद्योपाध्याय के उच्च शिक्षा में बढ़ते कदम और प्राप्त सफलताओं से पिता खुश जरूर थे लेकिन उनके ट्रांसजेन्डर स्वरूप को किसी भी रूप में स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। एक ट्रांसजेन्डर की स्थिति हमारे समाज में कैसी है इससे हम सभी वाकिफ हैं। परंतु इसके विपरीत मानोबी बंद्योपाध्याय का जीवन इससे भिन्न रहा। तमाम अटकलों के बावजूद आगे बढ़ती रहीं और सफलता की श्रेणी में अपना नाम शुमार किया। स्वयं कहती भी है कि "अगर मेरे परिवार ने इस विचित्र रूप के बावजूद मुझे सहारा न दिया होता, मुझ पर पढ़ने का दबाव न रखा होता तो भगवान जाने मेरे साथ क्या हुआ होता"[47]। आगे बताती है-"मुझे कृष्णनगर वूमन कॉलेज में अपनी नियुक्ति मिली। इसके अलावा नैहाटी का वूमन कॉलेज और नैहाटी के ही ऋषि बंकिम चंद्र कॉलेज का महिला विभाग भी मेरे चुनाओं में शामिल थे। यदि उनमें से कहीं नियुक्ति मिलती टो मैं अपने घर में रह सकती थी परंतु कृष्णनगर का कॉलेज अपने देहाती परिवेश और पहली पीढ़ी के छात्रों के साथ कहीं बड़ी चुनौती था। और हाँ, मैं भारत की पहली ट्रांसजेन्डर कॉलेज प्रिंसीपल बनी। असंभव संभव हो गया था"[48]।

7. भूपेन खख्खर : एक अंतरंग संस्मरण (2020) : सुधीर चंद्र

'भूपेन खख्खर: एक अंतरंग संस्मरण' इतिहासकार सुधीर चंद्र द्वारा लिखित सुप्रसिद्ध चित्रकार भूपेन खख्खर की जीवनी है। सुधीर चंद्र ने इस जीवनी को बड़े लगाव और संवेदना के साथ लिखा हैं। भूपेन खख्खर और सुधीर चंद्र एक-दूसरे के अच्छे दोस्त रहे हैं। इतिहासकार सुधीर चंद्र ने इस जीवनी के माध्यम से भूपेन खख्खर के जीवन से जुड़े ऐसे किस्सों का चित्रण किया है जिसे उन्होंने कभी भूपेन खख्खर के करीबियों से जाना-सुना तो कुछ ऐसे जिनके वे स्वयं प्रत्यक्ष साक्षी रहे। इसमें भूपेन खख्खर का रंगों के प्रति प्रेम, सामान्य से हटकर सोचने की कलाप्रियता, दोस्तों के साथ का बेबाकीपन, जीवन और संबंधों को देखने, समझने और उसे अपने चित्रों में उकेरने की गजब बेबाकी दिखती है। 'मैन इन पब'(1979), 'मैन ऐट द रैडफोर्ट'(1971), 'यू कान्ट प्लीज ऑल'(1981), और 'टू मैन इन बनारस'(1982) आदि चित्रों ने भूपेन

खख्खर को ख़ासी ख्याति दिलायी। भूपेन खख्खर 'गे' थे। और समलैंगिकता को लेकर बेहद संवेदनशील भी। लेडी डफ़रिन से हुई मुलाकात के वाकया का जिक्र करते हुए सुधीर चन्द्र कहते है कि" तब नहीं सोचा था। अब समझ में आता है कि, गीतांजलि और मुझसे नितांत विपरीत, भूपेन बड़े सहज भाव से लेडी डफ़रिन जैसों से दोस्ती कर लेता था। अपने इतिहास को वह भी जानता था, लेकिन लोगों के प्रति जजमेंटल नहीं होता था। सिवाय गुजरात 2002 जैसी नाकाबिल-ए-बर्दाश्त स्थिति में। और समलैंगिकों के प्रति संवेदनहीनता के वक्त" [49] जितने असाधारण भूपेन खख्खर स्वयं थे, उतनी ही असाधारण उनकी मित्रता भी। इनके लंदन के दोस्तों की एक लम्बी फ़ेहरिस्त थी। जिसका उल्लेख लेखक सुधीर चन्द्र जीवनी के 'भूपेन की दोस्ती' वाले हिस्से में करते हैं। इसी सन्दर्भ में लेखक भूपेन खख्खर की 'मैन इन पब' पेंटिंग की चर्चा करते हैं जिसपर "बात करते हुए एक बार भूपेन ने बताया था कि इस चित्र में आये आदमी जैसे नीचे तबके के गोरों से उसका ख़ूब मिलना-जुलना हुआ था। जिस तरह से उसने यह बात की थी उस में साफ़ इशारा था कि उसके चलते-फिरते शारीरिक सम्बन्ध भी हो गये थे उन में से कुछेक के साथ। इशारे से जादा तो उसने कभी वल्लभभाई, हीराभाई या शंकरभाई को लेकर भी कुछ नहीं कहा था। कहता भी क्यों ? स्त्री-पुरुष संबंधों की बात भी तो इसी तरह बगैर कहे कही जाती है" [50]

भूपेन खख्खर इस जीवनी में अपने संबंधों को लेकर साफ-साफ तो कहीं कुछ कहते नहीं नजर आते लेकिन अपनी यौनिकता को लेकर पूर्णतः स्पष्ट थे। लेखक के शब्दों में -"एक शाम गीतांजलि और मैं पहुंचे ही थे उसके यहां कि वह बताने लगा कि आज बड़ी मजेदार बात हुई। बम्बई से एक ऑफर आया है मुझे। बहुत सीरियस ऑफर है। आशा पारेख की मां ने भेजा है। अपनी बेटी से मेरी शादी कराना चाहती हैं वह। मामला इतना मजेदार था कि देर तक यही बात चलती रही। क्या आशा पारेख की अम्मा नहीं जानती कि तुम 'गे' हो ? मालूम होगा, पर उनका इंटरेस्ट तो लगता है किसी भी तरह अपनी बेटी को नासिर हुसैन के चंगुल से निकल लेने में हैं" [51]

भूपेन खख्खर जिंदादिल व्यक्ति थे। सतर्क रहने वाले। आस-पास घट रही घटनाओं का सूक्ष्म निरिक्षण करने वाले। सामान्य जन के नजरों से अछूते दृश्यों को अपने चित्रों में बाँधने में सिद्धहस्त थे। अस्वीकार्य और असामान्य लगने वाली घटना या व्यक्ति भूपेन खख्खर के लिए सहज और बिल्कुल सामान्य था। जिसकी झलक उनके द्वारा बनाये गये चित्रों में आसानी से देखी जा सकती है। उनकी इसी सहजता और पारखी नज़रों की चर्चा करते हुए लेखक लिखते है कि ''उभयलिंगता-'एंड्रोजेनी'- में उसकी बहुत गहरी दिलचस्पी थी। उसकी कला भरी पड़ी है उभयलिंगता के बिभिन्न पक्षों से। एक वक्त के लिए तो वह बिल्कुल रम गया था इस विषय में। उसको पता लगा कि बड़ोदा के पास वासद क़स्बे में एक आदमी स्त्री के वेश में अपना श्रृंगार कर बस अड्डे पर सारे दिन खड़ा रहता है। भूपेन पहुँच लिया वासद। वहीं उसने इस आदमी से दोस्ती कर ली और अपने घर भी ले आया उसे कुछ दिन के लिए। इसी आदमी को चित्रित किया है उसने अपने प्रसिद्ध चित्र 'सखीभाव' में'' [52]। उभयलिंगता और समलैंगिकता को ही अपने कला में भूपेन खख्खर ने स्थान दिया है ऐसा कत्तई नहीं है। अपनी कला के माध्यम से ये समाज से जुड़े तमाम सरोकारों के प्रति भी सचेत दिखते है। उनके 'फैक्ट्री स्ट्राइक', 'व्यू फ्रॉम टी शॉप', 'रोड बिल्डिंग वर्क इन कालका', 'मैन विद बूके ऑव प्लास्टिक प्लावार्ज', 'सन इज द फादर आव मैन', 'लैन्जकेपिंग इन हैड' आदि सचेतनता के प्रमाण हैं। गुलाम शेख पर लगे सांप्रदायिकता वाले आरोप के सम्बन्ध में भूपेन खख्खर से हुए बातचीत का विवरण देते हुए सुधीर चन्द्र बताते है- ''चूंकि हमारे संबंध भूपेन और गुलाम दोनों से बहुत अच्छे थे, यह संभव नहीं था कि इस नाजुक मसले पर हम भूपेन से बात न करें। सो हुई गीतांजलि और मेरी उससे अकेले में बात। उसका कहना था : शिकायत है क्या? मैंने क्या गुलाम के खिलाफ कुछ कहा है ? तुम लोग नहीं जानते, या गुलाम नहीं जानता, या लोग नहीं जानते कि मैं किस के साथ हूँ ? सब के अपने तरीके होते हैं तय करने के कि किस मामले में कितना बोलना है, कितना बाहर आना है। फिर उसने बड़े तैश में पूछा कि कभी होमोसेक्सुअलिटी का मसला उठता है तो तुम लोग कितना शोर मचाते हो। अब तक मैं भी थोड़ा आपे से बाहर हो गया था। मैंने कह दिया : 'बेचारे गुलाम का इसमें क्या कसूर है कि वह मुसलमान

है ? क्यों परेशान किया जाता है उसे, सिर्फ इसलिए कि वह मुसलमान पैदा हुआ है ?.............चेहरा तमतमाया, चिल्ला रहा था वह: 'जैसे गुलाम ने नहीं चुना मुसलमान होना, मैंने भी नहीं चुना होमोसेक्सुअल होना। मैं पैदा हुआ हूँ होमोसेक्सुअल, पैदा !' चिल्ला रहा था मुझ पर, सारी दुनिया पर, अपनी समलैंगिक बेचारगी में" [53]।

जीवन के अंतिम वर्षों में भूपेन लिखते हैं कि "धीरे-धीरे अब साठ साल की उमर पे हिम्मत कर पाया हूँ अपनी इच्छाओं और अपने दोस्तों के बारे में बोलने की" [54]। इस कथन से समाज में समलैंगिकता के प्रति लोगों के मानसिकता को समझा जा सकता है। यह समझ जा सकता है कि समाज का अन्य यौनिकता के प्रति रुख कितना कड़ा और कड़वा रहा है। एक कलाकार जिसने अपनी कला को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। जिसने अन्य यौनिकता के भी समाज में होने को सदा अपने चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया, जिसने इसे सदैव अपराधबोध की दृष्टि से मुक्त माना, जिसने अलग(Different sexuality) होने को स्वयं भोगा, जिसने अपने आस-पास अपने जैसे लोगों को देखा, विभिन्नता के तमाम परतों को देखा-महसूस किया वह व्यक्ति खुलकर अपनी पसंद-नापसंद को उम्र के साठवें वर्ष में अभिव्यक्त करता हैं, लगभग उम्र के अंतिम पड़ाव में। सुधीर चंद्र लिखते हैं कि "भूपेन यह भी बताता है कि, लोगों को झांसे में रखने के लिए वह भी उन्हीं की तरह 'नॉर्मल' है, वह बड़े-बड़े फ़िल्मी पोस्टरों में हीरोइनों को देखकर या किसी लड़की के बगल से निकालने पर ऐसे दिखाता था जैसे बड़ा आनंद ले रहा है जबकि अंदर ही अंदर उसे घिन आ रही होती थी इस सब से"[55] (यहाँ 'नॉर्मल' से तात्पर्य 'स्ट्रैट' अर्थात विषमलैंगिकता को ओर इशारा है ।) 'समलैंगिकता : मने माणस वधारे फावे छे' वाले अंश में लेखक (सुनील कोठारी से मिली जानकारी के आधार पर) ने भूपेन के घर में काम करने वाले एक नौकर का जिक्र किया है, जो तीन वर्षों तक भूपेन के साथ दुष्कर्म करता रहा। और बाद में भूपेन के कहने पर उसे घर से निकाल दिया गया। इस घटना के साथ सुधीर चंद्र अपने अनुमान को जोड़ते हुए लिखते है कि "नौकर के साथ हुए लंबे तकलीफदेह

अनुभव के बाद कुछ ऐसा भी हुआ होगा कि उसे समलैंगिकता में आनंद आने लगा" [56]। लेखक का यह अनुमान द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न करता है, भ्रम पैदा करता है। जैसा कि स्वयं सुधीर चंद्र ने इस बात का जिक्र किया है कि भूपेन खख्खर जन्म से समलैंगिक होने की स्वीकृति कर चुके हैं। जिसका उल्लेख जीवनी में कई जगह हुआ हैं। सवाल यह भी उठता है कि जिस वाकया या घटना ने व्यक्ति को तकलीफदेह स्थिति में पहुंचाया हो, वह वजह उसकी उम्र भर की पसंद कैसे बन सकती है। अगर इसे भटकाव की स्थिति भी मान लिया जाए तो वह क्षणिक होगी, स्थायी नहीं।

भूपेन खख्खर भिन्न यौनिकता के कारण केवल अपने अकेलेपन और तड़प से जूझ रहे थे ऐसा नहीं है। जिसकी चर्चा जीवनी के आधार पर मैं ऊपर भी कर चूंकि हूँ। लेखक, भूपेन खख्खर के जीवन के कठिन दौर और संघर्षों की चर्चा करते हुए लेखक कहते है कि " बात सिर्फ उन मुश्किल दिनों की और उसकी अपनी नहीं थी। उसके अपने समलैंगिक समुदाय-अपनी बिरादरी-की थी..............अजीब जिंदगी थी। जिनके साथ रहना-सहन, खाना -पीना ,उठना-बैठना, हँसना-रोना, उन्हीं से हर पल सतर्क रहना, कि कहीं भनक न पड़ जाए उन्हें उसकी खुफिया जिंदगी की। हंस रो भी नहीं सकता था खुल के वह" [57] दो रूपों में जीवन जी रहें मसलन 'बाहर से कुछ और' और 'अंदर अपनी एक दुनिया' को जीने के अपने कारण भी थे। सन् 1965 के आसपास समलैंगिकता को खुलकर जाहिर करना खतरे से खाली नहीं था। खुलकर जाहिर करने का अर्थ था अकेलेपन का शिकार होना और पूरी दुनिया को अपना शत्रु बनाना। सुधीर चंद्र इसी अध्याय में भूपेन खख्खर और वल्लभभाई के साथ होने को विस्तार से बताते हैं। बताते है कि कैसे वल्लभभाई महेंद्र देसाई को बताते है कि "भूपेन और वह एक-दूसरे के लिए बने हैं। कि उनका जन्म जन्मांतर का साथ है" [58]।

सुधीर चंद्र आगे लिखते है कि "28 साल चले भूपेन वल्लभभाई संबंध के केवल शुरुआती पाँच साल नहीं देखे मैंने। बाद के 23 सालों में खासी नजदीकी से जो देखा उसके आधार पर एक बड़ी बात इस

संबंध की समझ में आती है। वह है इसकी स्वाभाविकता। न भूपेन ने और न वल्लभभाई ने किसी को समझाने की कोशिश की कि उनका संबंध है क्या। कोई कुछ भी समझे कहे, उन्हें जैसे रहना था रहते थे और जो करना था करते थे" [59]। साथ ही भूपेन खख्खर के अन्य संबंधों का भी उल्लेख मिलता हैं। जिनमें शंकरभाई, रणछोड़भाई, चंद्रकांतभाई, और हीराभाई के साथ के गहरे और लंबे चले संबंधों का जिक्र है। जिसकी झलक उनके पेंटिंग 'गैलरी ऑफ रोग्ज' (1993) में देखी जा सकती है। लेखक बताते है कि "समलैंगिक स्पर्श की ऐसी ललक के बरक्स भूपेन अपने अच्छे से अच्छे सामान्य मित्रों के साथ शारीरिक दूरी बनाए रखता था" [60]। सन् 2014 में 'लमही' पत्रिका में प्रकाशित अपने लेख 'समलैंगिकता : कुछ अपने मन की' में सुधीर चंद्र लिखते है कि "बहुत कम ऐसे अच्छे आदमी जिंदगी में, दुनिया में, होते हैं जैसा भूपेन खख्खर था। बड़े-बड़े धनिकों से, अपने-अपने क्षेत्रों में ख्याति पाए लोगों से, हम जैसों से, और समाज के प्रति उपेक्षित-दमित लोगों से उसका अपनापा था।

अतः एलजीबीटीजन अपने भीतर की भावनाओं को अंदर ही दबाएं रखते है जिसके कारण उन्हें जीवन की जटिल त्रासदियों क सामना करना पड़ता हैं। यह एहसास तक नहीं होता समाज को कि चहुंदिशि छाए द्विधारी व्यवस्था इनके जीवन को किस हद तक प्रभावित करती है। द्विधारी व्यवस्था के आदि हम यह नहीं जानते कि भयानक आत्मतोषी अमानुषिकता का व्यवहर इनके साथ किये जा रहे हैं। समलैंगिक पूर्वाग्रहों से मुक्त होने के बाद भी अचेतनता के किसी कोने में उसके सूक्ष्म अवशेष हमारे भीतर कही न कही रह जाते हैं।

संदर्भ :

[1] . माया, शांति, आभा भैया (संपा). किनारों पर उगती पहचान नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ. 43

[2] . वही, पृष्ठ. 45

[3] . वही, पृष्ठ. 45

[4] . वही, पृष्ठ. 46

[5] . वही, पृष्ठ. 46. 47

[6] . पुष्पा, मैत्रेयी (संस्करण : 2002). कस्तूरी कुण्डल बसै, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ. 59

[7] . वही, पृष्ठ. 105

[8] . वही, पृष्ठ. 105

[9] . वही, पृष्ठ. 107

[10] . वही, पृष्ठ. 109

[11] . Sharma, Maya (Edition: 2006). Loving women: Being lesbian in unprivileged India, New Delhi: Yoda Press, pg. 6

[12] . वही, पृष्ठ. 262

[13] . वही, पृष्ठ. 267

[14] . वही, पृष्ठ. 295

[15] . वही, पृष्ठ. 307

[16] . श्रोत्रिय, प्रभाकर (प्रथम संस्करण : 2009). इला, नयी दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, पृष्ठ. 9. 10. 11

[17] . वही, पृष्ठ. 38

[18] . वही, पृष्ठ. 26

[19] . वही, पृष्ठ. 43

[20] . वही, पृष्ठ. 46

[21] . वही, पृष्ठ. 47

[22] . वही, पृष्ठ. 48

[23] . वही, पृष्ठ. 49

[24] . वही, पृष्ठ. 55

[25] . वही, पृष्ठ. 56. 57

[26] . वही, पृष्ठ. 60

[27] . वही, पृष्ठ. 67

[28] . वही, पृष्ठ. 69

[29] . वही, पृष्ठ. 82. 83

[30] . वही, पृष्ठ. 83. 84

[31] . राय, (डॉ.) शशिकला (प्रथम संस्करण : 2015). मैं हिजड़ा... मैं लक्ष्मी (अनु.सुरेखा बनकर), नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृष्ठ. 14

[32] . वही, पृष्ठ. 23

[33] . वही, पृष्ठ. 27

[34] . वही, पृष्ठ. 35

[35] . वही, पृष्ठ. 43

[36] . वही, पृष्ठ. 51

[37] . वही, पृष्ठ. 67

[38] . वही, पृष्ठ. 65

[39] . वही, पृष्ठ. 85. 86

[40] . बंद्योपाध्याय, मानोबी (पहला संस्करण : 2018). पुरुष तन में फंसा मेरा नारी मन (लेखिका. झिमली मुखर्जी पांडे), नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ. 9

[41] . वही, पृष्ठ. 13. 14

[42] . वही, पृष्ठ. 17

[43] . वही, पृष्ठ. 85

[44] . वही, पृष्ठ. 35

[45] . वही, पृष्ठ. 36

[46] . वही, पृष्ठ. 37

[47] . वही, पृष्ठ. 70

[48] . वही, पृष्ठ. 157

[49] . चन्द्र, सुधीर (प्रथम संस्करण : 2020). भूपेन खख्खर: एक अन्तरंग संस्मरण, भूपेन की दोस्ती, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ. 47. 48

[50] . वही, पृष्ठ. 48. 49

[51] . वही, पृष्ठ. 78

[52] . वही, पृष्ठ. 90

[53] . वही, पृष्ठ. 98

[54] . चन्द्र, सुधीर (प्रथम संस्करण : 2020). भूपेन खख्खर: एक अन्तरंग संस्मरण, समलैंगिकता : मने माणस वधारे फावे छे, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ. 99

[55] . वही, पृष्ठ. 101

[56] . वही, पृष्ठ. 104

[57] . वही, पृष्ठ. 188

[58] . वही, पृष्ठ. 116

[59] . वही, पृष्ठ. 127

[60] . वही, पृष्ठ. 133